संगति
भाग – १२

कुछ सदियों पहले 'अमरीका' (America) के निवासी अनपढ़, जँगली, वहशी लोग थे जब कि **'यूरोप'** (Europe) के देशों की सभ्यता — ज्ञान तथा विज्ञान द्वारा उन्नति कर रही थी।

कोलम्बस (Columbus) के प्रयास द्वारा अमरीका (America) द्वीप मिला, यूरोप के उन्नतिशील निवासियों से 'मेल-जोल', 'व्यवहार', संग अथवा **'संगति'** द्वारा धीरे-धीरे अमरीका (America) की सभ्यता भी उन्नति करती गयी।

यूरोप (Europe) की सभ्यता की 'संगति' के बिना 'अमरीका' निवासी अपनी पुरानी सभ्यता में ही जकड़े रहते।

ठीक इसी तरह मायिकी मंडल के जीव **आत्मिक ज्ञान के प्रकाश बिना — अहम् के भ्रम-भुलाव के अन्धकार में डूबे हुए हैं**। कुँए के मेंढक की तरह, यह जीव अपनी ही बनायी हुई **अहम् की अज्ञानता के अंधे कूँए में पलच पलच कर अपना जीवन व्यर्थ खो रहे हैं।**

कुँए के 'मेंढक' को यदि कोई बताये कि कुँए के बाहर अत्यन्त विशाल दुनिया है — जिसमें अथाह समुन्द्र हैं, तब मेंढक इस बात पर शक करता है, **तथा मानने के लिए तैयार नहीं होता।**

> कूपु भरिओ जैसे दादिरा कछु देसु बिदेसु न बूझ ॥
> **ऐसे मेरा मनु बिखिआ बिमोहिआ कछु आरा पारु न सूझ॥**
>
> (पृ ३४६)

जब से दुनिया रची गयी है — ईश्वर ने हम पर तरस करके असीम कृपा द्वारा **आत्मिक मंडल की ओर प्रेरित करने के लिए** अनेक गुरू, अवतार, पीर, औलीऐ, गुरमुख, भक्त, साधू जन संसार में भेजे। जिन्होंनें अपने **व्यक्तिगत**

जीवन तथा बाणी द्वारा जीवों को आत्म मंडल का सन्देश दिया तथा प्रेरित किया ।

साध रूप अपना तनु धारिआ ।
महा अगनि ते आपि उबारिआ ।। (पृ. १००५)

जब आत्मिक देश के वासी — 'हरिजन'—

उत्तम
श्रेष्ठ
सुन्दर
सुखदायी
रहस्यमयी
प्रेममयी
विस्मादी
बाणी
आत्मज्ञान
कहानियाँ
उपदेश
शबद
नाम

आदि **सुनाते हैं,** तब जन्म-जन्म से दृढ़ हुए मायिकी भ्रम-भुलाव के निश्चय कारण, **हम ऊपरी मन से** — इन **आत्म देश के सन्देशों को** —

सुन-सुना कर
पढ़-पढ़ा कर
मन की अपनी रंगत चढ़ा कर
मन घड़न्त ज्ञान घोट कर

सिर हिला देते हैं ।

क्योंकि यह अनोखी आत्मिक शिक्षा तथा **'दैवीय ज्ञान'** हमारे मन को —

प्रभावित ही नहीं करता
भीतर चोट ही नहीं करता

ग्रहण ही नहीं करता

रास ही नहीं आता

निश्चय ही नहीं आता

इसु मन कउ बसंत की लगै न सोइ ।।
इहु मनु जलिआ दूजै दोइ ।। (पृ. ११७६)

अंधे एक न लागई जिउ बांसु बजाईऐ फूक ।। (पृ. १३७२)

साधसंगति गुर सबदु सुणि रिदै न वसै अभाग पराणी । (वा. भा. गु १७/५)

साधसंगति गुर सबदु सुणि गुरु उपदेसु न चिति धरंदे । (वा. भा. गु १७/९)

जिस कारण हमारा आन्तरिक मन, गुरबाणी में दर्शाये आत्मिक ज्ञान को मानने के लिए तैयार ही नहीं होता ।

पड़ीऐ गुणीऐ किआ कथीऐ जा मुंढहु घुथा जाइ ।। (पृ. ६८)

पड़ीऐ गुनीऐ नामु सभु सुनीऐ अनभउ भाउ न दरसै ।।
लोहा कंचनु हिरन होइ कैसे जउ पारसहि न परसै ।। (पृ. ९७३)

इस प्रकार गुरबाणी के आत्मिक ज्ञान के **'आन्तरिक भावों'** अथवा **अनुभवी 'तत् ज्ञान' को समझने, जानने अथवा कमाने का हमें —**

ख्याल ही नही आता

आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती

उत्साह ही नहीं आता

यत्न ही नहीं करते

उद्यम तो क्या करना था ।

हम इस धुर से आयी बाणी को —

पाठ करने

पूजा करने

भाईचारिक व्यवहार

आवश्यकता पूर्ती के लिए

माया कमाने

राग के प्रकटाव

ज्ञान घोटने

वाद विवाद करने

मन्नत मनवाने

फोकट प्रचार करने

भले-भद्र बनने

धार्मिक ठाठ बाट रचने

के लिए ही प्रयोग करते हैं ।

यह गुरबाणी 'धुर' से आत्मिक मंडल में से अवतरित हुई है — इसके अन्दर **आत्मिक मंडल का वर्णन, ज्ञान, सन्देश तथा प्रेरणा भरी पड़ी है ।**

सतिगुर की बाणी सति सरूपु है गुरबाणी बणीऐ ॥ (पृ ३०४)

लोगु जानै इहु गीतु है इहु तउ ब्रहम बीचार ॥ (पृ ३३५)

रतना रतन पदारथ बहु सागरु भरिआ राम ॥
बाणी गुरबाणी लागे तिन्ह हथि चड़िआ राम ॥ (पृ. ४४२)

बाणी गुरू गुरू है बाणी विचि बाणी अंम्रितु सारे ॥ (पृ ९८२)

अंम्रित बाणी ततु वखाणी गिआन धिआन विचि आई॥(पृ. १२४३)

परन्तु जन्मों- जन्मों से मायिकी मंडल में निरन्तर गलतान हो कर हम **माया का 'स्वरूप' ही बन चुके हैं ।**

वास्तव में हमारा —

'ईश्वर' — माया ही है, तथा
'परमार्थ' — इस झूठी माया की पूजा करना है ।

यह जग मीठा,'अगला किसने डीठा' वाली हमारी आन्तरिक हालत हो चुकी है।

इस झूठी 'माया-रानी' का ही हम —

ख्याल करते हैं

चिंतन करते हैं

comp-1\e\dodra\lekh hindi\
sangat89(12).p65

योजनाएं बनाते हैं
चापलूसी करते हैं
अभ्यास करते हैं
हुकुम मानते हैं
पूजा करते हैं
कर्म करते हैं
परिश्रम करते हैं

कूर क्रिआ उरझिओ सभ ही जग
स्री भगवान को भेदु न पाइओ ॥ (सवये पा. १०)

कूड़ु राजा कूड़ु परजा कूड़ु सभु संसारु ॥
कूड़ु मंडप कूड़ु माड़ी कूड़ु बैसणहारु ॥
कूड़ु सुइना कूड़ु रुपा कूड़ु पैन्णहारु ॥
कूड़ु काइआ कूड़ु कपड़ु कूड़ु रूपु अपारु ॥
कूड़ि कूड़ै नेहु लगा विसरिआ करतारु ॥ (पृ ४६८)

कामु क्रोध माइआ महि चीतु ॥
झूठ विकारि जागै हित चीतु ॥
पूंजी पाप लोभ की कीतु ॥ (पृ. १५३)

लाहा माइआ कारने दह दिसि दूढन जाइ ॥ (पृ. २६१)

दूसरी ओर हम 'परमार्थ' का भी 'दम' भरते हैं तथा 'ईश्वर' से 'ठाठा बागा' (दिखावा) ही करते हैं ।

यदि कभी हमारे ऊपर कोई **विपत्ती आ पड़े** तब हम एक तरफ —

पाठ-पूजा करते हैं
साधु-संतों की मन्नत करते हैं
दान सुखते हैं

तीर्थ यात्रा करते हैं
प्रार्थनाएं करते हैं

तथा **साथ ही** अपनी चतुराई द्वारा —
उक्तियां-युक्तियां प्रयोग करते हैं
सिफारिश डलवाते हैं
रिश्वत देते हैं
ज़बरदस्ती करते हैं

यह **'दुविधापूर्ण' खेल केवल मनुष्य योनि ही खेलती है, बाकी योनियों को 'द्वैत भाव' का ज्ञान ही नहीं। वे कर्ता के हुकुम में सहज-स्वभाव अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं।** मनुष्य में भी यह द्वैत भाव अथवा 'पारवण्ड' का व्यवहार **दिखावटी धार्मिक लोग ही करते हैं।**

'नास्तिक' तो ईश्वर तथा धर्म को **मानते ही नहीं। इसलिए ये पारवण्डी नहीं हो सकते।**

आत्मिक मंडल के वासी **'गुरमुख' 'भक्तजन'** अपने **ईश्वरीय निजघर में विचरण करते हैं। उन्हे मायिकी मण्डल का कोई 'आकर्षण' नहीं होता।**

वे दुनिया में ईश्वरीय हुकुम अनुसार ईश्वर से भूली हुई रूहों को अपनी **व्यक्तिगत तथा लिखित सत्संगत द्वारा ईश्वरीय बाणी का सन्देश देते हैं।** इस प्रकार उन्हे कोलम्बस की भाँति, अपने स्रोत 'अकाल पुरुष' तथा **आत्मिक मंडल का सन्देश दे कर, निज घर की ओर प्रेरित करते हैं।**

इन आत्म देश के निवासियों — गुरूओं, अवतारों, भक्तों, साधुओं, सन्तों, गुरमुख प्यारों की **'सत्संगति' के बिना** — मायिकी मंडल के जीवों को अपने 'निजघर' अथवा 'आत्ममंडल' का **ज्ञान ही नहीं हो सकता।**

गुरबाणी इस नुक्ते को यूं दर्शाती है —

साधसंगति बिनु तरिओ न कोइ ।। (पृ ३७३)

बिनु संगती सभि ऐसे रहहि जैसे पसु ढोर ।। (पृ ४२७)

comp-1\e\dodra\lekh hindi\
sangat89(12).p65

साधसंगति बिना भाउ नही ऊपजै
भाव बिनु भगति नही होइ तेरी ।। (पृ. ६९४)

साध संगति कबहू नही कीनी रचिओ धंधै झूठ ।।
सुआन सूकर बाइस जिवै भटकतु चालिओ ऊठि ।। (पृ. ११०५)

बिनु साध न पाईऐ हरि का संगु ।। (पृ. ११६९)

साधसंगति गुर सबद विणु लख चउरासीह जूनि भवावै ।।
(वा.भा.गु ५/१८)

साधसंगति गुरु सरणि विणु निहफलु माणस देह इवेही ।।
(वा.भा.गु.२३/१४)

साधसंगति विणु भरमि भुलाइआ ।। (वा. भा. गु. ३९/१६)

दूसरे शब्दों में मायिकी भ्रम-भुलाव में भटके हुए, **'ईश्वर' को भूले हुए जीवों को इन गुरमुख प्यारों के 'मेल-जोल' अथवा 'सत् संगति' द्वारा ही आत्मिक मंडल का —**

ज्ञान होता है
निश्चय आता है
श्रद्धा उत्पन्न होती है
चाव उत्पन्न होता है
तड़प उठती है
प्यास लगती है
उमाह उठता है
प्रेम उमड़ता है
उद्यम होता है
सिमरन होता है
सेवा होती है
आत्म छुह लगती है
आत्मिक झलकें कौंधती है
आत्मा 'जाग' उठती है

comp-1\e\dodra\lekh hindi\
sangat89(12).p65

विस्माद होता है
प्यार आता है
'प्रिम रस' पान करते हैं
'प्रेम स्वैपना' के हिंडोले में झूलते हैं
'तत् ज्ञान' की सूझ आती है
आत्मिक रंग अनुभव करते हैं
आत्मिक महा रस पान करते हैं
'शबद' की सूझ होती है
'हुकुम' की सूझ होती है
नाम का प्रकाश होता है
माया छलनी से छुटकारा होता है
आवामन का चक्र टूट जाता है
यम से छुटकारा हो जाता है
निज घर में निवास होता है
'सहज' की मौज अनुभव करते हैं
'लोक सुखी परलोक सुहेला' होता है
मायिकी भवजल से पार हो जाते हैं।

साधसंगति उपजै बिस्वास ॥
बाहरि भीतरि सदा प्रगास ॥ (पृ. ३४३)

सतसंगति महि बिसासु होइ हरि जीवत मरत संगारी ॥ (पृ. ४०१)

सासि सासि सिमरउ प्रभु अपुना **संतसंगि नित रहीऐ ॥**
एकु अधारु नामु धनु मोरा अनदु नानक इहु लहीऐ ॥ (पृ. ५३३)

तितु जाई बहहु सतसंगती तिथै हरि का हरि नामु बिलोईऐ ॥
सहजे ही हरि नामु लेहु हरि ततु न खोईऐ ॥ (पृ. ५८७)

मुकति पाईऐ साध संगति बिनसि जाइ अंधारु ॥ (पृ. ६७५)

मुकति बैकुंठ साध की संगति जन पाइओ हरि का धाम ॥
(पृ. ६८२)

comp-1\e\dodra\lekh hindi\
sangat89(12).p65

हरि हरि हरि जसु घूमरि पावहु
मिलि सतसंगि ओमाहा राम ।। (पृ. ६९८)

मनु असमझु साधसंगि पतीआना ।। (पृ. ८९०)

सतसंगति मिलै त दिड़ता आवै हरि राम नामि निसतारे।।
(पृ. ९८१)

साधसंगति निहचउ है तरणा । (पृ. १०७१)

हरि के संत मिलि प्रीति लगानी विचे गिरह उदास ।। (पृ. १२९५)

साधसंगति भउ भाउ सहजु बैराग है । (वा.भा.गु.३/१३)

आत्मिक **'तत् ज्ञान' के बिना हमारे मन का 'दीपक' बुझा हुआ है** — जिस कारण, हम मायिकी अन्धकार में ही पलच-पलच कर जीवन व्यतीत करते हैं । **'अहम' में ही पाठ-पूजा, कर्म-धर्म करते हैं** तथा अपने आप को **'परमार्थिक' होने की झूठी तसल्ली देते हैं । अहम् की अज्ञानता में किए हुए कर्म-धर्म रूखे-सूखे, फीके, 'मुर्दा' साधन ही होते हैं ।**

इन फीके **'मुर्दा' साधनों से हमारी मानसिक अज्ञानता का 'अन्धकार' दूर नहीं हो सकता, तथा न ही हमारी अन्तर-आत्मा में 'नाम' का प्रकाश हो सकता है ।**

परन्तु हम बाहरमुख फोकट —

पाठ-पूजा

कर्म-क्रिया

तीर्थ-स्नान

ज्ञान-ध्यान

योग-साधना

ईश्वर से विमुख हुओं का मेल जोल

'दिखावटी संगति'

को ही परमार्थ का 'शिखर' समझ कर सन्तुष्ट हुए बैठे हैं ।

केवल सन्तुष्ट ही नहीं, अपितु —

भले-भद्र

परमार्थिक

प्रचारक

ज्ञानी

पण्डित

वनावटी साधु-संत

अथवा **'धर्म के ठेकेदार' बनकर फूले नहीं समाते ।**

दूसरे शब्दों में, अहम् मे किये कर्म-धर्म, पुण्य-दान, मेल जोल, सभा-सुसाइटियों आदि सब त्रिगुण मायिकी मण्डल का ही **व्यवहार तथा प्रकटाव है।**

इस प्रकार हम सारी उम्र फीके ज्ञान-ध्यान, कर्म-धर्म करते हुए भी —

आत्मिक रस

आत्मिक रंग

आत्मिक प्रकाश

आत्मिक रून-झुन

आत्मिक 'प्रेम-स्वैपना'

आत्मिक 'छुह'

आत्मिक 'तत् ज्ञान'

आत्मिक 'नाम'

से वंचित रहते हैं ।

पाठु पड़ै ना बूझई भेखवी भरमि भुलाइ ।। (पृ. ६६)

मनमुखि करम करहि नही बूझई बिरथा जनमु गवाए।। (पृ. ६७)

पड़ि वादु वखाणहि सिरि मारे जमकाला ।।
ततु न चीनहि बंनहि पंड पराला ।। (पृ. २३१)

पाठ पड़ै नही कीमति पाइ ।। (पृ ३५५)

किआ पड़ीऐ किआ गुनीऐ ॥
किआ बेद पुरानां सुनीऐ ॥
पड़े सुने किआ होई ॥
जउ सहज न मिलिओ सोई ॥ (पृ. ६५५)

मारगि मोती बीथरे अंधा निकसिओ आइ ॥
जोति बिना जगदीस की जगतु उलंघे जाइ ॥ (पृ. १३७०)

इसका मूल कारण यह है कि हमें सही उत्तम-पवित्र, जीवन्त '**आत्मिक संगति' नहीं प्राप्त होती जिसे गुरबाणी में** —

'सत' संगति
'साध संगति'
'सच्ची संगति'
'गुर संगति'
'उत्तम संगति'

आदि नामो से सम्मानित किया गया है ।

ऐसी **'सत् संगति' अथवा 'साध संगति'** की गुरबाणी में **बहुत महिमा बताई गयी है** — जिसे अगले 'भाग' में दर्शाया जायेगा ।

इसी लिए हमें ऐसी उत्तम दैवीय **'आत्मिक संगति' के लिए गुरबाणी में याचना करनी सिखलायी गयी है ।**

हरि जीउ आगै करी अरदासि ॥
साधू जन संगति होइ निवासु ॥ (पृ. ४१५)

भाई रे मो कउ कोई आइ मिलै हरि नामु द्रिड़ावै ॥
मेरे प्रीतम प्रान मनु तनु सभु देवा
मेरे हरि प्रभ की हरि कथा सुनावै ॥ (पृ. ४९४)

कहु नानक प्रभ बरवस करीजै ॥
करि किरपा मोहि साधसंगु दीजै ॥ (पृ. ७३८)

करि किरपा मोहि मारगि पावहु ॥
साध संगति कै अंचलि लावहु ॥ (पृ. ८०१)

वडभागी हरि नामु धिआवहि हरि के भगत हरे ।।
तिन की संगति देहि प्रभ जाचउ
मै मूड़ मुगध निसतरे ।। (पृ ९७५)

कोई आवै संतो हरि का जनु संतो मेरा प्रीतम जनु संतो
मोहि मारगु दिखलावै ।। (पृ १२०१)

आवहु संत मिलहु मेरे भाई मिलि हरि हरि नामु वखान ।।
कितु बिधि किउ पाईऐ प्रभु अपुना
मो कउ करहु उपदेसु हरि दान ।। (पृ. १३३५)

'अंधकार' अपने आप दूर नहीं हो सकता ।

'अंधकार' को दूर करने के लिए प्रकाशमयी ज्योति चाहिए ।

लाखों बुझे हुए दीपक 'प्रकाश' नही दे सकते तथा न ही दूसरे दीपकों **को जला सकते हैं ।**

ठीक इसी प्रकार **'अहम्‌वादी' मन से किये हुए पाठ-पूजा, कर्म-धर्म द्वारा हमारी मानसिक अज्ञानता का 'अंधकार' दूर नही हो सकता ।**

आत्मिक 'प्रकाश हीन' अथवा 'परमार्थ' से गुमराह हुए अनेक प्राणियों के समूह द्वारा भी मन का भ्रम रूपी अन्धकार दूर नहीं हो सकता । ऐसे 'समूह' को 'मेल मिलाप' या 'संगति' तो कहा जा सकता है — परन्तु गुरबाणी में दर्शायी हुई 'सत् संगति' 'साध संगति' या 'संत मण्डली' नहीं कहा जा सकता ।

गुरबाणी में स्पष्ट किया हुआ है —

सतसंगति महि हरि उसतति है संगि साधू मिले पिआरिआ ।।
ओइ पुरख प्राणी धंनि जन हहि उपदेसु करहि परउपकारिआ ।। (पृ ३११)

जो हरि राते से जन परवाणु ।।
तिन की संगति परम निधानु ।। (पृ ३५३)

हरि के संत प्रिअ प्रीतम प्रभ के ता कै हरि हरि गाईऐ ।।
नानक ईहा सुखु आगै मुख ऊजल संगि संतन कै पाईऐ।। (पृ. ७००)

comp-1\e\dodra\lekh hindi\
sangat89(12).p65

संत मंडल महि हरि मनि वसै ।।
संत मंडल महि दुरतु सभु नसै ।।
संत मंडल महि निरमल रीति ।।
संतसंगि होइ एक परीति ।।
संत मंडलु तहा का नाउ ।।
पारब्रहम केवल गुण गाउ ।। (पृ. ११४६)

उपरोक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि **'नाम प्रकाश' वाली जागृत-ज्योति की संगति द्वारा ही हमारे मन के बुझे हुए 'दीपक' जल सकते हैं ।**

गुरमुखि कोटि उधारदा भाई दे नावै एक कणी ।। (पृ ६०८)

दीपक ते दीपकु परगासिआ त्रिभवण जोति दिखाई ।।(पृ. ९०७)

गुरमुखि केती सबदि उधारी संतहु ।। (पृ ९०७)

गुरसिखु सिखु गुर होइ अचरजु दिखाइआ ।
जोती जोति जगाइ दीपु दीपाइआ । (वा.भा.गु २०/२)

दीवा बलदा दीविअहु समसरि परवाणै ।.......
पीर मुरीदां पिरहड़ी हैराणु हैराणै । (वा. भा. गु २७/२१)

इस महत्वपूर्ण आत्मिक नुक्ते को प्रो. पूरन सिंह जी ने यूं सुन्दर रूप में दर्शया है ।

हां जी ! **एक पलक के झपकने से संतों की दृष्टि लाखों रूहों की सुरति को मदद दे सकती है ।** ये मात्र 'इन्सान ' नहीं होते , शक्ल-सूरत केवल मनुष्यों वाली होती है, परन्तु इनमें मनुष्यों जैसा कुछ नहीं होता, केवल **'ईश्वरीय जीवन' हिलोरे लेता है।**

''हां जी, **'गुरमुख संत' वह जलती हुई मशालें हैं, वह 'बिजलियाँ' हैं, जिन्हें सतिगुरू जी ने अपने हाथ में थामा हुआ है, तथा जब उनकी मर्जी होती है तब किसी के दिल की मीनार पर जा बसती हैं ।**''

हां जी, 'गुरमुख संत' वे हैं, जिनसे यदि कोई आग की एक नन्ही सी चिंगारी मांगने आये, तब उसका सारा घर, अन्दर बाहर, **'अविचल ज्योति' से जगमगा उठे, अन्धकार न रहे तथा जीवन , निरन्तर अमुक तेल की ज्योति समान हो जाये।**

"हां जी ! 'सिमरन का जीवन'-'खमीर का जीवन' है। **यह खमीर गुरसिक्खों से प्राप्त होता है।** तभी 'आइ मिलु गुरसिख आइ मिल' की प्रार्थना सतिगुरू जी ने सिखलायी है।"

गुरसिक्खों, गुरमुखों से **खमीर प्राप्त किये बिना**, सिक्खी नहीं मिल सकती। 'अमृत छकाना', इसी **'गुप्त खमीर' की 'रास' देना है** तथा हां जी ! **सिक्ख की पहली जरूरत 'सिमरन' के 'खमीर वाला जीवन' है।**

गुरबाणी में इस नुक्ते को यूँ दर्शाया गया है —

तितु जाइ बहहु सतसंगती तिथै हरि का हरि नामु बिलोईऐ ॥ (पृ ५८७)

प्रभ का सिमरनु साध कै संगि ॥ (पृ २६२)

साधसंगि हरि कै रंगि गोबिंद सिमरण लागिआ ॥ (पृ ४५७)

संतसंगि अंतरि प्रभु डीठा ॥
नामु प्रभू का लागा मीठा ॥ (पृ २९३)

साध कै संगि पाए नाम निधान ॥ (पृ २७१)

क्रमशः...............

◆◆◆◆◆